# ॥ इश्तहार ॥

## श्रीमद्भागवत भाषाटीका संयुक्त क़ी० ७) पु०

इस ग्रन्थ के उत्तम होने में कदापि सन्देह नहीं है—इसका भाषातिलक व्रज बोली में बहुतही प्यारा है आशय प्रत्येक श्लोकों का है क्यों न हो इसके तिलककार महात्मा व्रजवासी अङ्गदजी शास्त्री हैं—यह तिलक ऐसा सरल है कि इसके द्वारा अल्पसंस्कृतज्ञ पुरुषों का पूरा कार्य निकल सक्ता है—संस्कृत पाठक भी इससे श्लोकों का पूरा आशय समझ सक्ते हैं इसवार यह ग्रन्थ टैप के अक्षरों में उम्दा कागज़ सफ़ेद चिकना में छापा गया है और विशेष विद्वान् शास्त्रियों के द्वारा शुद्ध कराया गया है जिससे बम्बई की छपीहुई पुस्तक से किसी काम में न्यून नहीं है उम्दा तसावीर भी प्रत्येक स्कन्ध में युक्त हैं—आशा है कि इस अमूल्यरत्न के लेने में महाशयलोग विलम्ब न करेंगे मूल्य भी इसका स्वल्प रक्खा गया है ॥

## चरकसंहिता सटीक मुजल्लिद क़ी० ७॥) पु०

यह वही चरकसंहिता है जो कि वैद्यक ग्रन्थों में सर्वत्र प्रसिद्ध है व बड़े बड़े वैद्यराजों से अतिशय माननीय है विद्वान्लोग अन्य ग्रन्थों में लिखी हुई औषधियों का संग्रह इसके नाम से निर्भय हो करते हैं अब इस प्रसिद्ध ऋषिप्रणीत ग्रन्थ की प्रशंसा करना केवल इबारत का बढ़ानाही है—इस यन्त्रालय में यह ग्रन्थ बहुत परिश्रम से बनवाया गया और छापागया है जिसमें रुपया भी विशेष व्यय हुआ है यह ग्रन्थ मूल श्लोकों के नीचे भाषा देवनागरी में टीका संयुक्त करके छापागया है यह टीका चरक के बंगला टीका से और मूल श्लोकार्थ दोनों से देखकर किया गया है इस टीका के उत्तम होने में कोई सन्देह नहीं है छपाई भी इसकी बहुत उम्दा है अक्षर उम्दा व कागज़ सफ़ेद मोटा चिकना लगाया गया है दो जिल्दों में यह पुस्तक छापीगई है एक जिल्द में सूत्रस्थान, निदानस्थान, विमानस्थान, शारीरकस्थान, इन्द्रियस्थान हैं और आदि में सूचीपत्र प्रत्येक रोगों का विस्तारसहित लगा है दूसरी जिल्द में चिकित्सितस्थान, कल्पस्थान, सिद्धिस्थान हैं तसवीरें भी लगाई गई हैं इत्यलम् ॥

१२

# ओ३म्

## अथ मङ्गलाचरणमाह ॥

दो० । एक अनूप अनाम अज अकल सकल गुण धाम ।
जाके या जग में नरन धरे वहुत विधि नाम ॥

चौपैयाछन्द ॥

शैव सकल जाको निशि वासर शिव शिव नाम पुकारें ।
वेद तत्त्व के जानन वाले जाको ब्रह्म उचारें ॥
शक्ति उपासक जे जगमाहीं जाको दुर्गा जानें ।
गाणपत्य सब लोग जासु को नाम गणेश बखानें ॥
ध्यान वैष्णव जाको धरिके विष्णु विष्णु कर टेरें ।
सौर लोग दिनमणि रवि कहिके जाको प्रतिदिन हेरें ॥
बौद्ध लोग जाको बुध कहि के प्रेमाऽधिक उपजावें ।
न्यायशास्त्र के जाननवाले कर्त्ता कहि कहि गावें ॥
जैनी सब अर्हन्त नाम कहि जामें मनहिं लगावें ।
मीमांसा के पाठक जन सब जाको कर्म्म बतावें ॥
जे कबीर के शिष्य जगत में जाको साहिब बोलें ।
नानकशाही जाहि रैन दिन वाह गुरू मुख खोलें ॥
जाको मुसल्मीन अल्लह अरु खुदा सदा बतलाते ।
जाको इंग्लिस्तान निवासी गाड ईशु कहि गाते ॥
महा प्रभू चैतन्य कृष्ण जिहिं बंगाली नित ध्यावें ।
और बहुत पंथाई जाको जो बहु नाम बतावें ॥
जो जल थल नभ में परिपूरण तीनि काल के माहीं ।
जाके बिन जाने दुनियां के लोग सदा भरमाहीं ॥
ज्यों मृगनाभि मध्य कस्तूरी पर वे अनत ढढोरें ।
तैसेहि जाके ज्ञान बिना नर फिरत खात झक झोरें ॥

जैसे कोउ मूर्ख अज्ञानी कामधेनु गृह छोड़े।
दुग्ध काज जंगल में जाके अर्क पत्र को तोड़े॥
ज्यों किरात गुंजाफल बीने मुक्काफल कहँ त्यागे।
तैसेहि जाहि छोड़ अज्ञानी विषय सुःख महँ पागे॥
सुत दारा धन कुटुम्बादि के लिये वृथा शिर फोरें।
जलचर नभचर जाबिन जाने अमृत छाँड़ि विष घोरें॥
ज्यों कपि कीर बिना बंधन के बँधे आप को मानें।
त्यों जड़ जीव जाहि बिन जाने माया मोह भुलाने॥
ज्यों मछली आटाके कारण तालू मध्य छिदावे।
त्यों यह जीव जाहि बिन जाने लालच कर दुख पावे॥
थूल छीण जाको नहिं कहिये श्याम गौरहू नाहीं।
जाके मिले संधि नहिं रहती यथा लवण जल माहीं॥
जो बिन पाणि कर्म्म बहुतेरे करै चरण बिन डोलै।
मुख बिन खाय नयन बिन देखै बिन बाणी जो बोलै॥
श्रवण बिना जो सुने घ्राण बिन सूँघे बास घनेरी।
त्वक बिन परस करै सबसे जो सत्‌चित् आनँद ढेरी॥
बाल कुमार तरुण वृद्धापा जाको नाहिंन कूतो।
व्यापक जो सब ठौर एक रस ज्यों माला में सूतो॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र नर नारि नपुंसक नाहीं।
बटु गृहस्थ वनचारि यती नहिं स्वयं प्रकाश्य सदाहीं॥
क़ारी कुंजर महँ समान जो और कहां लग गाऊँ।
उमा मिश्र मन वचन कर्म्म से ताकहँ शीश नवाऊँ॥

इति मङ्गलाचरणम्॥

---

ओ३म् सच्चिदानन्देश्वरायनमोनमः ॥

# प्रबोधद्युमण्युदयकी भूमिका ॥

मैं अत्यन्त हर्षपूर्वक उस सच्चिदानन्द सर्व्व व्यापक जगत् उपादान कारण भक्तवत्सल सर्व्व शक्तिमान् सुर मुनि वन्दित सहस्रार्क समप्रभ एकाद्वितीय परब्रह्म परमात्माको कोटिशः धन्यवाद देताहूं कि जिसने कृपादृष्टिकर मुझको इस सर्व्ववर्णों पर दुष्प्राप्य ब्राह्मणकुलमें जन्मदिया और जो प्रतिदिन प्रतिपल मेरी रक्षा करता है-तदनन्तर-विदित हो कि संसार में ब्रह्म को खोज सबही करते आये हैं और करते हैं-और अब जगत् में मत मतान्तर इस आधिक्यतासे फैलगये हैं कि उनकी गणना करना एक साधारण काम नहीं है-यद्यपि सर्व्व आस्तिक मतोंके मुख्य मुख्य नियम एकही हैं परन्तु उनमें अन्यान्य अन्तर इतनी बहुतायत से होगये हैं कि एकमत दूसरेका पूराप्रतिलोमसा मालूम पड़ता है और इसीकारण मत मतान्तर में विरोध भी प्रतिदिन उन्नति ही करताजाता है-हिन्दू मुसल्मानों को म्लेच्छ-मुसल्मान हिन्दुओंको काफिर कहते हैं-आर्य्यसमाजी पण्डितों को पोप पण्डित आर्य्यसमाजियोंको लोप और गप्पाष्टकी बतलाते हैं शैव वैष्णवों को और वैष्णव शैवोंको बुरा पुकारते हैं-और यही कारणहै कि जगत् से भ्रातृस्नेह और प्रीति उठगई-वास्तव में यदि पक्षपात छोड़ विचार कियाजाय तो निश्चय ईश्वरीय और सत्यमत एक है और सबकेलिये ईश्वरीय नियम वही हैं क्योंकि हमसब ईश्वर के पुत्रहैं और ईश्वर हम सबपर समान प्यार करता है-हम सबको अतएव पक्षपात द्वेष ईर्षा छोड़ना उचितहै और सत्य ग्रहण करनाही धर्म्महै-सब मत तथा पंथस्वीकार करतेहैं कि सत्य भाषण करना उचितहै-अहिंसा परम धर्म्महै-किसीका मन दुखाना बुराहै यही ईश्वरके मुख्य नियमहैं और सत्यासत्यदर्शक हिताहित ज्ञान Conscience. ईश्वर ने सब किसी को दिया है-किसी जाति किसी वर्ण तथा किसी देशवासी वा किसी रंगका मनुष्य क्यों न हो-फिर हम क्यों वेदके कहे धर्म्मसे मुँह छिपावें-क्यों हम बाइबिलका नाम सुनतेही मुँह बिचकावें-क्यों हम अपनेही को सच्चा और उत्तम समझें और क्यों औरोंको झूठाबूझें-हमको उचितहै कि जिसप्रकार हम सब एकही माता पिता अर्थात् परमात्माके उत्पादित पुत्रहैं सबसे भ्रातृस्नेह करें और ईर्षा द्वेष पक्ष-

पात त्याग सत्यके ग्रहण करने को कटिबद्धहों-क्या आवश्यकता है कि हम मूड़ मुड़ा संन्यासी हों—क्या आवश्यकता है कि हम मुसल्मानहों औरोंको काफिर जानें क्या आवश्यकताहै कि हम अपने धर्म्मको छोड़ औरोंको पापी और अपने को सचाईसाई बखानें-हम सत्यको ग्रहणकर असत्यके बाल क्यों न मुड़ावें और हम सत्यका कलमा पढ़ मुसल्लम ईमान क्यों न हों अरे हम पक्ष-पात और द्वेष त्याग सत्यहीका वैपटिज़्मा क्यों न लेवें॥

जहांतक बुद्धि पहुँचती है मैं तो यही धर्म्म कर्त्तव्य और सत्य मत जानताहूं कि सत्य ग्रहणकर असत्यका परित्याग करै-और अति हर्षपूर्वक प्रकट करताहूं कि श्री ६ विद्वद्वर्य पण्डित गयाप्रसाद साहिब बी-ए और मुन्शी महावीरप्रसाद साहिब एफ-ए साहिब वकीलके सत्संगतने उत्साह दिलाया कि मैं एक छोटी सी पुस्तक रचकर अपने अन्यान्य मित्रवर्गों और देश वासियों को यह उत्कृष्ट सम्मत प्रकाश करूं और श्रीकृष्णमिश्र विरचित संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकको अवलोकनकर यह मेरा सुंदर उत्साह बढ़कर इतना दृढ़हुआ कि आज यह प्रबोधद्युमण्युदय नामक नाटक मैं अपने मित्रवर्गों और अन्यान्य गुण ग्राहकों के लाभार्थ रचकर प्रकाशित करताहूँ-इसके प्रथम अंकमें तो मैंने जीव (मनुष्य) अविद्या निशामें मोहवशहो कैसे मेरा मेरी कहता और मानताहै और कैसे अहंकार रज्जुमें बँधाहै दर्शायाहै दूसरे अंकमें कामकी प्रबलता-तीसरेमें विवेककी प्रशंसाऔर चतुर्थ अंकमें मोहका वर्णन और संसारके दंभ आदि वर्णनकिये हैं-पंचम अंकमें मोहकी विभव और परिवारका वर्णनहै-षष्ठ अंकमें महामोहको राजा विवेकने किसप्रकार दमनकर पराजय कियाहै बखाना है-और सप्तम और अन्तिम अंकमें विवेक विजयपुरुषका अविद्या निशासे जागना-प्रबोधोदय-और पुरुष प्रति उपनिषद् और सत्य के हितोपदेश हैं। आशाहै कि सर्व्व सज्जन पुरुष इस छोटीसी पुस्तकके गुण ग्रहण करेंगे-और सम्पूर्ण जन अवलोकन कर केवल कहींहीं कहीं मेरी धृष्टताको ध्यानमें ला मुझको व्यर्थ और अनुचित दोष न देवेंगे॥

१ सितम्बर सन् १८९२ ई० } सर्व्व मित्रोंका हिताभिलाषी,
उमादयाल मिश्र.




# अथ प्रबोधद्युमण्युदयः ॥

## प्रथमअङ्कः

( रंगभूमि में एक मनुष्य आशीर्वाद पढ़ताहुआ आया )

श्लो० । वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्यस्थितंरोदसी
यस्मिन्नीश्वरइत्यनन्यविषयः शब्दोयथार्थाक्षरः ।
अन्तर्यैश्चमुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
सस्थाणुःस्थिरभक्तियोगसुलभो निश्रेयसायास्तुवः ॥

वेदान्तों में जिसको एक पुरुष अर्थात् अद्वितीय ब्रह्म कहते हैं जो पृथ्वी और स्वर्ग में व्याप्तहोकर स्थितहै जिसमें ईश्वर यह शब्द अनन्य विषय अर्थात् एक मात्रका वाचक और यथार्थ अक्षरों से अर्थवान् है जिसको मुक्तिके अभिलाषक जन प्राणआदि इन्द्रियों को नियमित करके अन्तःकरण में ढूँढ़ते हैं और जो स्थिर भक्ति योग करके सुलभ है सोई स्थाणु शिव तुम सबोंके लिये कल्याण कारीहो ॥ (नान्दी के पीछे सूत्रधार आया )

सूत्रधार । बस बस अब अति विलम्ब करने से क्या प्रयोजन- ( नेपथ्यकी ओर देखकर ) मारिष यह सभा अगले कवियों के अनेक रसप्रबंधको देखचुकी है सो आज मैं भी इस में एक अति मनोरंजन ( प्रबोधद्युमण्युदय ) नवीन नाटक किया चाहताहूँ तुम पात्रवर्गसे कहदो कि वे सब सावधान होजायँ ॥

(नटआया)

नट। जैसी आज्ञादीजै॥

सूत्रधार। इस समय बड़े बड़े पूजनीय पण्डित महाशयों से मैं निवेदन करताहूं कि आपको हमपर कृपादृष्टिकरनाही होगी वा उत्तम वस्तुको बहु आदरमान देनाही पड़ेगा अब आप लोग सचेतहो इस परमानन्ददायक नाटक को सुखपूर्वक अवलोकन कीजिये॥ (नेपथ्यमें यह शब्दहुआ)

दो०। मम धन ये पितु मातु मम यह सुन्दर मम ग्राम।
मो अग्रज मो अनुज यह मम उत्तम यह धाम॥

सूत्रधार। (अति आश्चर्यसे इधर उधर देखकर) हैं हैं यह कौन है जो यह मेराधन ये मेरे पिता माता—मेरा ग्राम इत्यादि अज्ञानीक वचन कहता और अति आनंदित होरहा है—कौनहै (कुछ सोच कर) हो हो जाना यह जीवहै जोकि अविद्या निशा में ज्ञानहीन निद्रा ले रहाहै और स्वप्नवत् दशामें होकर असत्य को भी सत्यही मानरहाहै॥ (नट और सूत्रधार दोनों बाहर गये॥

(मित्रवर्गोंसहित जीवका रंगभूमि में प्रवेश)

जीव०। (अति आह्लादसे)

दो०। मम धन ये पितु मातु मम यह सुन्दर मम ग्राम।
मो अग्रज मो अनुज यह मम उत्तम यह धाम॥

कुण्डलिका। सुभग लमानी ग्राम इक गंगा के वा पार।
भयो तहाँ श्री विप्रवर प्रकट सकल संसार॥
प्रकट सकल संसार नाम तिहिं बोधी जानो।
सोइ लमानी मिश्र आदि पुरुषा जिय ठानो॥
शून्य सिद्धि शरभूमिभा भतार संवतमुजग।
श्रीमद्बोधीमिश्र कियनिकेत सुरपुर सुभग॥

दो० । कमलमिश्र तिहिं पुत्र भे तासुपुत्र गोपाल।
तिहिसुत गार्गिप्रसादभे चन्द्रदत्त जिहिंलाल ॥
तासु तनय भे चण्डिका मथुरा जिनकरपूत।
जासु सुकृत जनु देहधरि माधोभे हरि दूत ॥
कुण्डलिका। माधो के सुत होत भे कमल नैन सुखदैन।
रम्य लमानी ग्राम महँ जिनके मधुरे बैन ॥
जिनके मधुरे बैन सात गोशत जिन कीन्हे।
सुन्दर बाग तड़ाग शिवालाहू रच दीन्हे ॥
लोगन कहँ उपदेश कियो हरिहर अवराधो।
तनमन चित्तलगाव तबहिं मिलिहैं श्रीमाधो ॥
दो० । शररस मुनिक्षितिविक्रमी संवत काशीवास।
कमलनैन तनु त्यागकिय लैआतुर संन्यास ॥
तिहिं सुभाग्य वरवंशमणि प्रागदत्त भे आय।
तासु वंश भूषण भये शंकर मिश्रसुकाय ॥
जायबसे शिवराज पुर शंकर मिश्र सुजान।
भये दयानिधि पुत्र तिहिं वैभव वित्तमहान ॥
तासुपुत्र मण्डन भये भगुँत नगरमहँ आय।
जासुतनयघनसूरजगसुयशरह्यो तिहिंछाय ॥
भयो व्याह घन सूरको पुर रसूलमहँ जाय।
रहे तहाँ धन पायबहु मनमहँ अतिहर्षाय ॥
तहँते उठपुनि आयके बसे कालपी माहिं।
ईश्वर आराधनकरतदिनसुखसहित सिराहिं ॥
रामप्रसाद सुपुत्र तिहिं उपजे जगप्रख्यात।
रामदास जिनकर तनय विष्णुभक्त भे तात ॥
सोरठा। मिश्रेश्वरी प्रसाद तिनकर सुत जगहोतभे।

रहैं सहित आह्लाद द्वेष मान मन नेकनहिं ॥

कुण्डलिका । मननिज कुलकर शीलनिधि मिश्र ईश्वरीप्रसाद ।
विष्णु भक्त दृढ़ने भये रहैं सदा अविषाद ॥
रहैं सदा अविषाद करैं निजवंश उजागर ।
निशिदिन प्रफुलितवदन सदनद्युतिमनहुप्रभाकर ॥
सबसन करैं सुप्रीति नेहराखें सब तिनसन ।
भाषैं मधुरे बैन रहैं सदैव अति स्वच्छमन ॥

दो० । बाणरामनिधिशशिजबै संवत श्रावणमास ।
मिश्र ईश्वरीप्रसाद तब सुरपुर कीन्हों वास ॥

कुण्डलिका । राजत भा सुरलोक महँ प्रफुलित तनुहर्षाय ।
तीनि पौत्र द्वैपुत्र नहिं जगत राखिसमझाय ॥
जगत राखि समझाय सिखावन बहुविधिदेई ।
सुतन पढ़ाय बनाय चतुर अद्भुत यश लेई ॥
बाग कूप शुभभवन उच्चअति तिहिकरभ्राजत ।
शहर कालपीमाहिं तासु अतिकीर्ति विराजत ॥

दो० । तासुतनय द्वै प्रकटजग रवि शशि इव द्युतिमान ।
श्रीमत मातादीन अरु मनीराम गुणखान ॥
सो सुवंश कात्यायनी सुत श्री मातादीन ।
उमामिश्र उतपत भयों सुनिय सुविज्ञ प्रवीन ॥

मित्र । अतिउत्तम तव भवन यह परम रम्य तव ग्राम ।
मनोरम्य यह बाग तव जो दायक आराम ॥

जीव । आओ मित्र हम सब इस बागमें चलें और वह सामने सुन्दर सघन दाड़िमवृक्षकी शीतल छायामें बैठकर मित्रविलासका सुखभासिकरें ॥

( सबबागमें जाकर इधर उधर टहलनेलगे )

मित्र। आहाहा! यहांपर कैसी मंद मंद सुगंधितवायु आरहीहै आओ इसगुलाबकी क्यारीके निकट उससचिक्कणशिला परबैठें। ( सबबैठगये )

मित्र। अच्छातो अब वाक्विलास होने दीजिये॥

दूसरामित्र। हाँ अच्छीबात है होवे—और लीजिये प्रारंभकर्त्ता इसका मैं होताहूं॥

कवित्त। शीशपरगंगा घोटपीवै नितभंगा सबैकामतो कुढंगा हैं। मुंडनकीमाला नैनतीसरेमें ज्वाला मृगचर्म्मका दुशाला जाके भूत्यरणरंगाहैं। बैलपै बिराजै पत्नी सिंहचढ़िगाजै जहँ मूपक मयूर सर्प्प बसत इकसंगाहैं। होतनाहिं दंगा मनीरामसबचंगा शिवजीसदैवदीन कंजनपतंगाहैं॥

तीसरामित्र। शरदऋतुआई तिथिपूनोंसुहाईभाई देखिकैजुन्हाई चित्तसुन्दरकन्हाईको बाँसुरीबजाई छाईसारेब्रजमंडलमें गोपिकालुभाई धाई रागकीनिकाईके। सबनसुमानत्यागेमानै नाहिंरोके कोऊपिता पुत्रभाईके। पंगनके शीशबीच शीशके सुपायनमें धारअलंकारमनीराम पासआईशेषशाईके॥

अन्यमित्र। फूलतचमेली रातचाँदनी सुहाई देखि बाँसुरी बजाय नंदनंदन बुलाईं बाम। धाईं सबधामछोड़ रोमरोमभस्यो काम आईं बनबीच जहाँ ठाढ़े हैं गुपाल श्याम। सबनकी ओरनैन जोर बैनबोलेकान्ह रातसमय काननमें कहा है तिहारो काम। करोजायसेवापति आपनीसुधारोगति मानो मनसीख घरै जाहु जाहु मनीराम॥

जीव। वाह वाह कैसी आनंद बेला यहहै (दूसरे मित्र प्रति) अब आप कुछ कहिये॥

मित्र। बहुत अच्छा तो लो मैं आपको राग सोरठ एक सुनाताहूं।

कोयलिया कूकत आधीरात।

कारी कारी घटा देखिकै निशि दिन जिय घबड़ात १

चैन देत नहिं पापी पपीहा पीपी कूके जात

ताके बोल शूल से लागत करमलमल पछितात २

बिरहा देह जरावत निशि दिन करत नये उतपात

सूखोमांस श्वास नहिं निकसत पीरोपरिगयो गात ३

मोको करत मोर पिक दादुर दुर दुर दुर दिनरात

पी बिन सब बैरी भये मेरे कोउ न बूझत बात ४

हाइ दई निर्दई तुहूं अब लग्यो करन मम घात

पियहि छुड़ाय बनाय बियोगिनि लाडारी गुजरात ५

हे बलदेव पियारे तुमबिन छिनछिन जिय अकुलात

शीघ्र दर्शदे टारहु सब दुख आयगई बरसात ६॥

अन्यसर्वमित्र। आहाहा कैसा सामयिकराग मित्र। तुमने गायाहै (दूसरे मित्र प्रति) अच्छा अब आप कोई राग सुनाइये॥

मित्र। मैं एक रागिनी आलापनी गाऊंगा सुनिये।

जब से पियने बिसारी मुहिंनिशिदिन मारत काम कटारी

बिरहानल दिन रात जरावत देह भस्म करडारी

सूनीसेज। शूलसम लागत बिषसम भई उजारी

चन्दन चन्द चाँदनी मोंको आवत दृष्टि अँगारी

जबतें पिय परदेश सिधारे यह गति भई हमारी

रोय रोय अँखियाँ लालभई हैं देह पीतभई सारी

सगुन गिनत घिसगईं अँगुरियां मंत्र यंत्र करहारी

कोउ न छांड़ो जोशी पंडित ढूंढ़ फिरी दिशि चारी

अरे दई निर्दई दई क्यों विपति मोहिं यह भारी

प्रीतमको परदेश पठै के घोट घोट मोहिं मारी
वेगि पिया से मोहिंमिलाओ जाउँ तुमपै बलिहारी
जन्म जन्म में दासीरहूँगी शालिग्राम तुम्हारी

मित्र। आहाहा आपने तो आनंदही बरसादिया॥

(इसीबीच छोटे बड़े सब वृक्षों के पातहिलनेलगे मानों तो इसआनंदको देखा इन जड़ वृक्षोंकाभी मन हर्षसंयुक्त होअधीरहो डुलगया और आकाशसे मेघराज छोटीछोटी बूँदों से पानी बरसानेलगा--सबमित्र आनंदितहो एक दूसरेके गलेमें हाथ डाले सघन कुंजोंमें लहरानेलगे)

(और एक तरुणावस्था मित्रने मधुर वाणी से उच्चारण किया)

मनोरागस्तीव्रं विषमिवविसर्पत्यविरतं प्रमाथीनिर्धूमो ज्वलतिविधुतः पावकइव। हिनस्ति प्रत्यंगं ज्वरइव गरीयानितइतो नमांत्रातुंतातः प्रभवतिनचाम्बा न भवती॥

(इसीवाणी से सम्मुखलता ओटसे दूसरे मित्र ने मधुरध्वनिकी)

शरीरंक्षामंस्यादसति दयितालिंगनसुखे भवेत्सास्रंचक्षुः क्षणमपि नसाहृष्यतयदि तयासारंगाक्ष्यात्वमसिन कदाचिद्विरहितं प्रसक्तेनिर्वाणेहृदयपरितापंवहसिकिम्॥

जीव। वाहमित्र! आज परमानंद रहा॥

आओ अबदेखो वह सम्मुख कैसी सुहावी लताकुंजहै वहां चलें देखो वहाँ कैसे वृक्षपुष्पवर्षा कररहे हैं विविध बयार सुगंधके भारसे मंद मंद चलरही है मानो मदमत्तगयंद निर्द्वन्द्व चलाजाता है। और कभी कोयलका मधुर मधुर शब्द दूरसे सुनाई आता है वह अमृतरूपी मोर और कोकिलाका बोल अमोल मनको मोल लिये लेता है॥

मित्र। अहामित्र ! यहबड़ा आनन्ददायक बाग है—इसमें आकर बहुत हर्षहुआ ॥

( नेपथ्यमें )

दो०। होतपराजयमोंअछत किहिविधि स्वामीमोह।
गणनाकहा विवेककी क्रोध भ्रातके सोंह ॥

एकमित्र। देखो देखो यहदेदीप्त मुख कामदेव आताहै-जिसनेसंसार वशकरलियाहै और मनको आसक्त करताहै-मत्त होनेसे नेत्ररक्तहैं—वहदेखो विधुवदनी मनहरणी प्यारी रतिको संगलिये-अतिहर्षके कारण कंपायमानहोरहाहै-अहाहा वह देखो शरीर पुलकायमानहो रोमांचित भुजों के बीच कठोर कुचवती नवयौवना प्यारी रतिको छाती से लगाताहै। वह आताहै देखो कामदेव आताहै-आओ हमसब एकओरहो इसआन्दोलनका सुखप्राप्तिकरेंगे॥

( सब बाहरगये )

इति प्रथमअङ्कः ॥

---

## अथ द्वितीयअङ्कः ॥

( काम और रतिका रंगभूमिमें प्रवेश )

काम।( क्रोधसे ) दो०। होतपराजयमोंअछत किहिविधिस्वामीमोह।
गणनाकहा विवेककी क्रोध भ्रातके सोंह ॥

शास्त्रोंसनविवेक निश्चित केवल बुधजनोंके हृदयमें तभी तकरहताहै जबलौं इन्दीवराक्षी कमलनयनी की विशिख दृष्टिबाणसरिस, भृकुटी धनुसे उनपर नहीं पड़ती है ॥

सुन्दर रम्यस्थान-सुनयनी मनमोहनी नवयौवनास्त्री छोटे छोटे पौधे जिनपर मदमत्त गुंजार करतेहुए भ्रमर

शोभादेरहेहैं--मल्लिका इत्यादि नानाप्रकारकी मनोहर लतायें--और सुगंधित मन्द मन्द वायु-और सुन्दरचाँदनी रात्रि-ये सब मेरेशस्त्र हैं--जिनके वश सर्व संसार होता है तो फिर विवेककी क्या सामर्थ्य है ?॥

रति। विवेक-महाराजाधिराज मोहकाशत्रु बुद्धिवर बहुत है।

काम। मेरीप्राणप्यारी तेरास्वभाव तेरे स्त्रीहोनेके कारण भीरुहै और अरे तू विवेकसे क्योंभयकरतीहै--यद्यपि मेरा धनुष् और बाणपुष्पके हैं तथापि प्रिया सर्वसंसारदेव और दानव दोनोंमिलके संग्रामभूमिमें मेरी सोहीं एकक्षणभरभी नहीं ठहरसक्के। देवप्यारी जगद्गुरु ब्रह्मा अपनीहीं पुत्रीपर आसक्तहुआ--सुरराज इन्द्रने अहल्यासे भोगकिया--चन्द्रमाने अपनी गुरुपत्नी से संभोगकिया-ऐसा कौनहै जिस ने मेरे वशहोकर वर्जितमार्ग में पदनहींरक्खा-मेरे बाणों का तीक्ष्णबेधन क्या संसारको बुद्धिभ्रष्टनहीं करदेताहै ?॥

रति। सत्यहै--परन्तु जिसकी सहायतामें हमारे अनेकबलवान् शत्रुहैं वह अवश्य भयकरनेके योग्य है॥

काम। उँह। इनसबका विनाश तो केवल हमारे उनमें जामिलनेहीसे होजायगा--क्रोधके सम्मुख शीलक्याहै--मेरीसोहीं ब्रह्मचारी कौन है--और लोभके साम्हने दृढ़ता--पवित्रता और अपरिग्रह ( ईमान्दारी ) क्या वस्तु है॥

इसप्रकार इन्द्रियजित होना--यम-संयम-आसन-प्राणायाम--प्रत्याहार--ध्यान-धर्म्म और समाधि जिन सबकी उत्पत्ति मनकी स्थिरतासे है-शीघ्र अदृश्य और लोपहोजायँगे स्त्रियाँ विनाशकरसक्ती हैं और वे सर्वदा मेरी भ्रूविलासनीहीं हैं-अवलोकन-मधुरभाषण-विलास-आलि-

ङ्गन और साथ किन्तु केवल उनका स्मरणमात्रही मनको चलायमान और विकल करनेको समर्थ है-पुनः ये सब हमारे राजमंत्री अधर्म्म से जामिलेंगे-जिसके मद मत्सर और दम्भ सदैव आज्ञानुवर्त्ती सुहृद हैं ॥

रति । हमसुनती हैं कि तुम्हारी और शम दम विवेक इत्यादिकी उत्पत्ति एकही स्थानसे है ॥

काम । एकहीस्थान-प्यारी ! हमसब किन्तु एकही मातापितासे उत्पत्तिहैं-परमात्मा और मायाके संयोग से प्रथम लोक प्रसिद्ध पुत्रमन उत्पत्ति हुआ जिसने कि त्रिलोकीकी रचना करके हमारेदोपुरुषाओं मोह और विवेककोउत्पादनकिया-मनके दोपत्नीथीं प्रवृत्ति जिसकापुत्रमोह हमारावंशकर्त्ता उत्पत्ति हुआ और दूसरी निवृत्ति जिसकापुत्र विवेकहुआ जिससे दूसरा हमारा शत्रुवंश चला ॥

रति । प्रीतम!तोतुममें और उनमें भ्रातृस्नेहके प्रतिलोम इतना वैर क्यों है ? ॥

काम । प्रिया ! यद्यपि हमसब एकहीपुरुषासे उत्पत्तिहैं तथापि दोनोंवंशों में जगत् प्रसिद्ध वैरचलाआता है जिसप्रकार कौरव और पांडवों में रहा और जिससे कि भुवननाशक युद्ध महाभारतकाहुआ--हमारे पिताने यहसर्वजगत् त्रि-रचा और उनके हमपर पाक्षिक स्नेहसे सब हमारेही वशी-भूतहुआ और विवेक विभवरहित अकेला भ्रमताफिरता है-इस द्वेष से वह हमारे पिता और हमें निर्मूल करने की इच्छामें रहता है ॥

रति । ( सभय ) प्रीतम बड़ा भय-तो है ॥

काम । मेरी प्राणप्यारी-डरैमत-क्योंकि उनसबका निराशपुरुषा

कासा चिन्तवनहै कि हमारे वंशमें कालरात्रि के समान घोरकर्मणी विद्यानामक एक राक्षसी उत्पन्न होवेगी--

रति। ( भयसंयुक्त ) हाय हमारे कुलमें राक्षसी उत्पत्ति होवेगी- ( कांपने लगी )

काम। प्राणवल्लभा ! डरैमत। डरैमत। डरैमत। ऐसेकहतेहीहैं॥

रति। यह राक्षसी का करैगी ?॥

काम। सरस्वती का वचन है कि मनसे विद्यानामक पुत्री उत्पन्न होवेगी और यह अपने माता पिता और भाई इत्यादि सर्वकुलका भक्षणकरलेगी॥

रति। (भयसे कॉंपतीहुई)मुझेबचाओ (उसकीगोदमें गिरपड़ी)

काम। ( आलिंगनका सुखपाकर- अलगहो ) आहास्त्रीका आलिंगन कैसा आनंददायक है-आह-इनके चपलनेत्र कैसे तारोंसे अधिक शीघ्रता करतेहैं-मेरेशरीरमें लपटीहुई कोमलभुजाओं परके कंकण कैसा मनोहर मधुर मधुर शब्द करते हैं-आहा-इनउच्च और कठोर कुचोंकास्पर्श कैसा आनंद देता है-( अतिप्यारसे हृदयलगाकर और कमलवत् कपोलोंको बारबारचुम्बनकर ) भयमतकर भय मतकर हमारे रहते विद्याकी उत्पत्ति कैसेहोसक्ती है॥

रति। तो प्राणपति ! निश्चय यह राक्षसीकी उत्पत्ति होवेगी।

काम। हाँ--निश्चय--विवेक और उपनिषद्से विद्या और उसके भाई प्रबोधकी उत्पत्ति होगी और शम दम इनकी परिचर्य्या करेंगे॥

रति। तो शम दमइत्यादि इनकी उत्पत्तिसे क्यों प्रसन्न होते हैं वह राक्षसीतो इनसबकाभी विनाश करसक्ती है और इन सबकाभी अवश्य विनाश करदेगी॥

काम । प्यारी ! दुष्ट पुरुष जो संसारका नाश करना चाहते हैं पापका कोई विचार करते हैं ? इन दुष्ट प्रकृति पुरुषोंका कर्म्म देख कि जिनसे उत्पत्ति हुएहैं उन्हींका नाश करनेको कटिबद्धहैं और फिर आपभी नष्ट होजायँगे--जैसे कि धुआँ अग्निही से उत्पत्ति होकर और अग्निको नाश करदेताहै और फिर स्वयंभी नष्ट होजाता है ॥

( नेपथ्यमें )

दोहा । रे पापी रे दुष्टजन हमहिं कहत तू क्रूर ।
अहंकार अविवेक गुरु तजहिंधर्म्म रतिशूर ॥
सोरठा । सोइ अहं वश होइ मोर पिता मन मोहनें ।
बाँध्यो जगपति जोइ अहंकार रजुसुदृढ़ कै ॥

काम । ( रतिप्रति ) यह देखो विवेक प्यारी मति सहित आताहै । यह मति देवीभी हमारेही कुलमें उत्पन्न हुईथी--यह देखो विवेक जोकि अतिनीच और जिसका सब अनारदरही करतेहैं-कैसा कृश शरीर स्वयं छविहीन--किंचित् मतिकी कान्तिसे प्रकाशित जिस मतिकी स्वयंशोभा स्वइच्छानुचारी सोहादिने मंद करदी है जैसा कि चन्द्रमाका प्रकाश सघन घन में दुरिजाताहै ॥
अब हमारा इस स्थानमें बिलम्ब करना उचित नहीं है चलो चलें ॥ ( दोनों बाहर गये )

इति द्वितीयअङ्कः ॥

---

## अथ तृतीयअङ्कः ॥

( राजाविवेक और मतिका प्रवेश )

विवेक । ( विचिन्त्य ) प्यारी ! इस दुर्विनीत दुष्टपुरुषके अभिमान

संयुक्त वचन तुमनेसुने ? हमको वह पापकर्म्मी कहताथा ॥

मति । आर्य्यपुत्र ! अपनो दोष कौन देखतुहै ॥

विवेक । देखो प्यारी ! अहंकार और अन्योन्य अभिमानयुक्त पुरुषों ने सच्चिदानंद निरंजन जगत्प्रभु परमात्माको पाशबद्ध करके दीन और आनंद शून्य दशामें कररक्खा है । सो प्रिया ! ये सबतो पुण्यात्माहैं और हम जोकि उस बंधनसे परमात्माको छुड़ाने में तत्पर हैं सो पापात्मा हैं--इन दुरात्मनोंने संसार वश करलिया है ॥

मति । प्राणपति ! हमतौ सुनती हैं कि जगत् प्रभु सर्व्व व्यापक परमेश्वर तो सहजानंद स्वयं और नित्य प्रकाशस्वरूप है--फिर वह परमात्मा इनके बंधन में कैसे आयो और महामोहसागर में किस प्रकार डूब्यो ? ॥

विवेक । प्रिये ! जिस प्रकार स्त्रियों के भाव और चरित्रके वशहो मनुष्य अपनी धैर्य्यताको छोड़देता है और मूढ़ होजाताहै इसी प्रकार सर्व शक्तिमान्--शान्त--तेजस्वरूप--सत्य--अनंत और ज्ञानस्वरूप परमात्मा--माया के संयोग होनेपर अपनीदशा और अपने को बिसारदेताहै ॥

मति । प्रीतम ! यदि सहस्र किरण संयुक्त सूर्य्य को एक काली रेखा छिपासक्तीहो तो सम्भव है--माया भी महाप्रकाश सागर ईश्वरको स्ववश करलेतीहोगी ॥

विवेक । प्यारी ! माया अविचार सिद्ध है--वह वारविलासनी सदृश है--भावको वह इस प्रकार उत्तमतासे दर्शाती है किन्तु असत्यको पूर्ण सत्यहीकरदिखाती है-कि उससर्वो-परि पुरुषकोभी वञ्चन करलेती है ॥

मति। प्राणपति ! तो यादुर्विदग्धा माया उदारचरित्र परमेश्वर को किस प्रकार ठगतीहै ?॥

विवेक। प्राणप्यारी ! माया अप्रयोजन और अकारण कर्म्म करती है वञ्चना स्त्रियोंका स्वाभाविकधर्म्महै--निस्संदेह स्त्रियां पिशाचिनीही समान होतीहैं--प्यारी देखो ! जब कोई कामिनी किसी मनुष्यके मृदु हृदयको अपनी वञ्चक कटाक्षसे बेधन करती तो कहो कौनसी शक्ति उसमें नहींहोती है ?॥

दोहा। मोहति हैं वा रमतिसह करत मत्त, सो ताहि।
विकल शिथिलकर मदनयुत देतविडम्बनिवाहि॥
पुनि एक और कारणहै॥

मति। प्रीतम ! सो क्या ?॥

विवेक। इस दुराचारिणी मायाने यह विचारा कि अब मैं वृद्धहुई-मेरी युवाअवस्था होचुकी-और यह पुरुष ( आत्मा ) हू वृद्धहै और स्वाभाविकही शान्ति है-अतएव मैं अपने पुत्र को पारमेश्वर पदपर स्थापित करूंगी--और मनने जोकि अपनी माता मायाके अभिप्राय को भलीभाँति जानता है और उससे बड़ीप्रीति करताहै और उससे उत्पन्न होनेके कारण स्वाभाविकही उसीके सदृश है--सो उस मनने यह नवद्वार शरीर बनाये और यद्यपि एक है उसने अपने को अनेक किया और इन शरीरों में निवास किया-माया ने पुनः अपनी चेष्टा उसमेंदी और स्फटिकमणिके सदृश उसमेंभी वैसाही आभास होनेलगा॥

मति। ( दोहा ) मातुपितहिं अनुहरहिंसुत यहैलीक मतिधीर।
वृककर सुत वृक होतहै खात मांस नहिं खीर॥

विवेक। अपने पौत्र अहंकारकी उपाधिवशहो परमात्मा ने कहा

"मैंहूं" और इस प्रकार मायावशहो अविद्या निद्राले परब्रह्म परमात्मा अपनी सत्यदशा भूलगया और अपने को मनकी चेष्टानुवर्ती दशामें किया और नानाप्रकारके स्वप्न देखनेलगा कि मैं उत्पन्न हुआहूँ-यह मेरो पिताहै यह मेरी माताहै--मेरो कुटुम्ब-मेरी स्त्री--मेरे पुत्र--मेरे मित्र यह मेरो शत्रु ये सुकर्म्म ये कुकर्म्म ये मेरे भाई यह बहिन, मेरो गृह, मेरोग्राम और यह मेरोनाम इति आदिहैं माननेलगा॥

मति। आर्य्यपुत्र ! (दोहा) सोसतचित आनंदघन ईश प्रबोध स्वरूप। या निद्रातें जागहहि किधिविधि कवजगभूप ॥

विवेक। (लज्जितहो नीचाशिरडाल मौनहो बैठा)

मति। आर्य्यपुत्र! हैं हैं कैसे लज्जितहो नीचाशिरडाल अवाक् होगये ॥

विवेक। स्त्रियां स्वाभाविकही वैरोधक और द्वेषकारिणी होती हैं-अतएव मैं प्यारी ! असमंजस में हूं--कि क्याकरूं ॥

मति। प्राणनाथ ! नहीं नहीं मैं द्वेष से यह नहींपूंछतीहूं किन्तु धर्मानुचारिणी स्त्रियां अपने पति के सुधार्मिक विचारके पूर्णहोने में सहायता देतीहैं ॥

विवेक। प्यारी ! प्रबोधका उदय तब होवेगा जब देवीउपनिषद हमारे दोनोंके चिरकालके बिछोहसे जो द्वेषमानरहीहै और अप्रसन्नहै मुझसे फिर आमिलेगी और यहमिलाप तबहोगा कि जब शान्तिइत्यादि मेरी आज्ञानुसारिणी होंगी और तू पदार्थज्ञान छोड़ स्थिरहो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिअवस्थाओं से भिन्नहो तुरीय में प्राप्तिहोगी ॥

मति। चाहै अहंकारके बंधनसे सबमोक्षपाजावें परंतु यहअहंकार तो मायाके सदैव नित्यानुबंधहै-और सदैवहै और सर्वदारहैगा॥

विवेक। यदि यह सत्यहै तो प्राणप्यारी ! मेरा मनोरथसिद्धहोने में अभी बहुत अवकाश और चिरकालहै-परन्तु प्यारी ! वे जो कथनकरते हैं कि वही अद्वितीय जगतकर्त्ता परमेश्वर अनादि और अनंत परमात्मा बहुतों में विभाजितहोगया है और इसप्रकार ईश्वरको शरीरधारी मान जो उस परमात्माको बद्धय जन्म मरणइत्यादि अवस्थाओं में मानतेहैं-उनपुरुषोंको मैं उत्कृष्टकरदूंगा कि जिससे उनकी इस प्रकारकी कल्पना उनके आयुके साथही नष्टहोजायगी और तब फिर मैं ब्रह्मकी ऐक्यता स्थापित करूंगा ॥

( नेपथ्यमें )

दोहा। जाहुं अबहिं करिहौं यतन नृपआयसु जो दीन्ह ।
यहि विवेक सहअनुचरन शमदम जीतहुँचीन्ह ॥

मति । ( आश्चर्य्यसे ) प्राणनाथ ! यह कोहै ? ॥

विवेक। प्यारी ! यो महामोहको अनुचर अहंकारके पुत्रलोभ का प्रियपुत्र दम्भ आवतहै--आओ इन दुरात्मानों का और कर्म्म तुमको दिखलाऊं--चलो वहां चलें ॥

( दोनों बाहरगये )

इति तृतीयअङ्कः ॥

---

## अथ चतुर्थअङ्कः ॥

( दम्भका रङ्गभूमि में प्रवेश )

दम्भ। राजा महामोहने जो मुझको आज्ञा दीहै कि विवेक और उसके मंत्री सुधर्मके भेजेहुए शम दम इत्यादिको जो सर्व्व तीर्थस्थान और धर्म्मक्षेत्रोंमें प्रबोध उदय करनेकी इच्छासे गयेहैं-तुम उन सबको वहां जाकर रोको और धर्म्मकर्म्मोंको

जोकि इस प्रिय संसारके स्नेह और मोह से मोक्ष पानेके अर्थ किये जाते हैं सबको वर्जन करो-सो मैं जाताहूं--रात्रि समय तो हमसब मित्र सहित वेश्याओंके रमणीकभवनोंमें रहैं और निर्भयता से भोगविलास करैं और दिनको बड़े महात्मा-सर्वज्ञानी-अग्निहोत्री-वेदवक्ता और नाना प्रकार के अनेक सत्यमार्गदर्शक-ब्रह्मज्ञानी बनजाया करेंगे ॥ (देखकर) आहा वह कौन रक्तनेत्र किये ऊपरको मुंह उठाये दक्षिणदेशसे आताहै जिसकेपीछे वह एकमनुष्य हँसता चलाआताहै ? देखूंतो चलकर ॥

(अहङ्कार और विदूषकका प्रवेश)

अहंकार । (दोहा) व्यापरह्यो अज्ञानजग सत्यमार्ग नहिंध्यान ।
हितउपदेश न कोउसुनै गहै न कोउ ममज्ञान ॥

(इधरउधरदेखकर) इन पुरुषोंको देखो जोकुछ वे पढ़तेहैं उस का अर्थ भी नहीं समझतेहैं ॥

विदूषक । हिं हिं--क्या तोता जो कुछ वह पढ़ता है सभीका अर्थ समझताहै ? ॥

अहंकार । (औरोंके निकटजाकर) यह देखो इन के चारोंओर पुस्तकों का तो बड़ा ढेर लगाहै और चारोंवेदों को काँख में दावेहैं परन्तु समझते कुछ नहीं ॥

विदूषक । (हँसकर) वाह वृषभ और गर्दभ क्या पुस्तकें लाद कर नहीं ले चलते हैं ॥

अहंकार । (दूसरीओर जाकर) ये देखो आसन बिछाये कर्म्मकाण्डी बने बैठे हैं परन्तु जो कुछ इस इनकी हाथकी पुस्तकमें लिखाहै छोड़ बुद्धिका परिश्रम सब व्यर्थ और इन की जान असत्यही है ॥

विदूषक । ( मुसक्याकर ) तभीतो एकस्थानमें श्राद्ध करातेसमय इन महात्माजीने एक प्राचीन छापेकी पुस्तकमें "पिण्डो परि सूत्रं दद्यात्" इसवाक्यकी सकारकी टांग उड़जाने के कारण "पिण्डंपरि मूत्रंदद्यात्" पढ़कर पिण्डों को मूत्र स्नान करवायेथे ॥

अहंकार । ( औरोंकी ओर जाकर ) ( आपहीआप ) क्या कहिये ( प्रकट ) ये देखो संन्यासी बने बैठे हैं--मैलेवेष--बड़े बड़े केश किये आंखें निकाले ऐसे बैठे हैं मानों साक्षात् तप देह धारण किये विराजमानहैं ॥

विदूषक । वाह क्या कहनाहै ( मुँह बिढुकाकर ) अभी थोड़े दिन की बात है कि येतो कोल्हू चलाकर तेल पेरतेथे और ये महात्मा जो इनकी बाईंओर ध्यान लगाये बैठे हैं मिट्टीके सुन्दर घड़ा बनाकर बेंचतेथे--परन्तु देखो ईश्वरकी महिमा ज्योंहीं इनकी गृहपत्नी तिलिनियां और कुम्हरिनियां मरी त्योंहीं सब सम्पत्ति नाश होनेपर इनको अनुभव हुआ और कला जगउठी ॥

अहंकार । ( अन्य ओर जाकर ) ये देखो महात्मा निर्द्धनकारक जी हैं ये कैसे गंगाजी में शिलाडार उसपर शालिग्राम स्थापित किये रुद्राक्ष सटकाते हैं और यजमानका धनहर अपनी तर्जनी अंगुलीसे उनको बैकुण्ठमार्ग बताते हैं कि देखो वह है-चलेजाओ ॥

विदूषक । ( धीरे से ) परन्तु वह तर्जनी यजमानके घरकी ओरको करके कहते हैं--अर्थात् कहते हैं कि तुम्हारे घरकी वह रास्ता है चलेजाओ ॥

अहंकार । ये देखो त्रिडंडी बने बैठे हैं-कोई द्वैतवादी कोई अद्वैत-

चादी वनगये हैं किन्हींका औरभी निराला हालहै- (आगे जाकर) आहाहा ये देखो मानों तो दम्भहीरूप धरे हैं-वाह यहतो बड़ा ध्यानलगाये गोमुखी में हाथडाले हजारिया सटकारहे हैं (उसकेपासजाकर) कल्याणहो ॥

(दम्भ अनादरसहित हुंकारसे उसे निवारण करताहै और तब दम्भका एक शिष्य आताहै)

शिष्य। ब्राह्मण ! मार्गकर--प्रथम पादप्रक्षालन करले फिरआ ॥

अहंकार। (क्रोधसे) हम ? ॥

दम्भ। (हाथसे उसे ठहरनेको कहा)

शिष्य। लीजिये--पादप्रक्षालन कीजिये-यह जलपात्रहै ॥

अहंकार। हिं। इसका क्या फल। अच्छा ला ॥

दम्भ। (ओष्ठ काटकर) उँह दूरहो--हमारे ऊपर तेरे छुये हुए अपवित्र जलके कण वायुसे गिरते हैं ॥

अहंकार। वाह बड़े आश्चर्य्य का ब्राह्मणत्व यहहै ॥

शिष्य। हाँ हमारा इसप्रकारका ब्राह्मणत्वहै--अत्यन्त पवित्र पुरुष और महान् आचारी भी हमारे बैठने का आसन कभी नहीं छूते हैं ॥

अहंकार। अरे तो मैं क्या जिसकी परमपवित्रता सर्वत्र प्रकटहै इस आसनपर न बैठूँ। रे अज्ञान सुन--मेरीमाता अवश्य उच्चकुल की न थी--परन्तु मैंने एक अग्निहोत्र ब्राह्मणकी पुत्रीसे विवाहकियाहै और अतएव अपनेपितासे उत्तम और उच्चहूं ॥

विदूषक। क्यों नहीं ॥

अहंकार। मेरे सालेके मित्रके मामाके लड़केको झूँठाही दोष लगाया गयाथा तौभी मैंने अपनी प्यारी स्त्रीको इस सम्बन्ध होनेके कारण परित्याग दिया ॥

दम्भ । सत्य है । परन्तु तू हमारे आचारको नहीं जानता है एक समय हम ब्रह्माके आश्रम को गये तो सर्व मुनि उठबैठे और ब्रह्माने मेरी बड़ी बिनतीकर गौके गोबरसे अपनी सर्व वस्तुएँ पवित्रकर मुझे उनपर स्थापित किया ॥

अहंकार । ( क्रोधितहो ) इसीपर इतना अभिमान-इन्द्र और ब्रह्माका क्या महत्त्वहै-एकने अपनी गुरुपत्नी पर कुदृष्टि कर उसके संग व्यभिचार किया और दूसरेने जो इच्छा अपनीही पुत्री सरस्वतीसे की वह सब संसारमें प्रख्यात है और ऋषि उत्पत्तिका क्या महत्त्व है--धीमरकन्या से ऋषि श्रेष्ठ व्यास और हरिणीसे शृंगीऋषि उत्पत्ति हुए-परन्तु मेरी प्रभुता ऐसी है कि मेरी उत्पत्ति होतेही सहस्रों इन्द्र सहस्रों ब्रह्मा और बड़ेबड़े ऋषि मुनि अदृश्य होगये॥

दम्भ । ( हर्षसे उसकीओर देखकर ) अहा ये तो हमारे पितामह अहङ्कारहैं ( पैरोंपर गिरकर ) मैं दम्भ--तृष्णा और लोभ का पुत्र प्रणाम करताहूं ॥

अहंकार । आयुष्मान्भव पुत्र ? तेरा प्रियपुत्र अनृत कुशल है ? ॥

दम्भ । अनृत बिना तो मुझे क्षणभरभी चैन नहीं है ॥

अहंकार । तेरे माता पिता तृष्णा और लोभभी प्रसन्नहैं ? ॥

दम्भ । हां सर्व कुशलहैं- और वेभी सब यहीं हैं ॥

अहंकार । वत्स ! मैंने सुनाहै कि विवेकने मोहको बहुत दुःखित कररक्खा है ? सो मैं इसीकारणसे आयाहूं ॥

दम्भ । हां-अच्छाहुआ जो आपभी आगये । हम सब इसीकार्य्य में तत्परहैं-इन विवेकादि दुष्टपुरुषोंने बड़ा उपद्रव कियाहै ॥

अहंकार । वत्स ! धीरजधर-कोई भयकी वार्त्ता नहीं है अरे । इन दुष्टपुरुषों को अब उपद्रव करनेकी सूझीहै । ( हाथमीड़

कर ) और ( ओष्ठकाटकर ) अरे इनको स्वामी महामोह का प्रताप विस्मरण होगया-रे इन दुराचारियों को मेरीबड़ी भुजाओंका बल क्यों भूलगया-अरे मैंतो सारा ब्रह्माण्डलौट पौटकर सक्काहूँ-क्या क्रोध और कामइत्यादि सुभट ऐसे बलहीनहोगयेहैं कि विवेकको उपद्रव करनेका उत्साहबढ़ा ॥

( नेपथ्यमें )

अरे देखो महाराजाधिराज महामोह आवतहैं कोई है ? कौन है ? उठो उठो चलो शीघ्र चमचमातीहुई स्फटिकमणिकी चौड़ी चमकतीहुई सड़कोंपर चोआ चन्दन छिड़को और सर्व मार्गोंको कनछाओ-अरे शीघ्र बड़े बड़े ध्वजा पताका और शोभनीक निशानोंको सब जगह सजवादो-- देखो-शीघ्रताकरो-शीघ्रता करो-स्वामी का आगमन है ॥

दम्भ । महाराज आते हैं--चलो हमसब अगाऊ बढ़कर उनको लेआवें ॥

अहंकार । हाँ चलो ॥ ( सब बाहरगये )

इति चतुर्थअङ्कः ॥

---

## अथ पञ्चमअङ्कः ॥

( राजामहामोहका बड़ी विभव और परिवारसमेत प्रवेश )

राजामहामोह । ( मुस्कराताहुआ ) अरे ये पुरुष कैसे निरंकुश और जड़बुद्धि हैं कि ये विचारते हैं कि आत्मा शरीर से कोई वस्तु भिन्नहै और इस जीवको पुनः दूसरीअवस्था में पापपुण्यका फल भोगना पड़ताहै--छिह--यहतो आकाशमें उगेहुए वृक्षमें से फलोंकीसी अभिलाषा करना है--जीवको शरीरसे भिन्न अवस्थामें किसने देखाहै-क्या

तत्त्वमिलकर शरीर नहीं बना है और इसीमेल से क्या शरीरमें जीवकी उत्पत्ति नहीं होतीहै? तो फिर किसप्रमाण से ये दुर्विचारी-मनुष्योंमें जो सबइन्हीं पंचतत्त्वोंसे बनेहैं-ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इत्यादि भिन्नता स्थापित करते हैं। अरे ये दुर्बुद्धि क्यों अपनी और पराई स्त्रियोंमें भिन्नता करतेहैं? अरे ये बुद्धिभ्रष्ट यह नहीं समझतेहैं किः-

श्लोक। यावज्जीवन्सुखंजीवेन्नास्तिमृत्योरगोचरः ।
भस्मीभूतस्यदेहस्य पुनरागमनंकुतः ॥
अग्निरुष्णोजलंशीतं शीतस्पर्शस्तथाऽनिलः ।
केनेदंचित्रितंतस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थितः ॥
यावज्जीवेत्सुखंजीवेदृणंकृत्वाघृतंपिबेत् ।
भस्मीभूतस्यदेहस्य पुनरागमनंकुतः ॥
यदिगच्छेद्परंलोकं देहादेषविनिर्गतः ।
कस्माद्भूयोनचायातिबन्धुस्नेहसमाकुलः ॥

इत्यये-अरेये सुखसे रहनेके लिये कर्म्मोंमें सुकर्म्म और कुकर्म्म का विचार क्याकरतेहैं?। निस्संदेह बड़ेही अल्पबुद्धिहैं ॥ है कोई? अच्छा-मंत्रीको बुलाओ ॥

( एक अनुचर आया )

अनुचर। जो आज्ञा महाराजकी । ( बाहरगया और अधर्म्मको साथलेकर फिर आया )

अधर्म्म। जय जयजीव-क्या आज्ञा है? ॥

राजा। भैया मंत्री आओ। ( अपनी बाईओर बैठालिया ) मंत्री! देखो अब हमको सावधानतासे रहना उचित है। नहीं तो विवेककी सेना दृढ़ता पकड़ती जाती और फिर उसको पराजय करना साधारण न होगा ॥

अधर्म्म। स्वामीका बड़ा आतंक है तथापि हम सब बड़ी सावधानतासे रहेंगे और देखिये मैं अभी सब योद्धाओं को बुलाकर युद्ध की तैयारीकी आज्ञा देताहूं कि विवेकके परिवार को बीन बीनकर मारडालें--एकभी न बचनेपावे। स्वामी का बड़ा प्रताप है--देखिये कैसा कौतुक होता है और अभी बातकी बातमें दिग्विजयका डंका बजता है॥

दम्भ। स्वामी! आपके प्रतापसे--यद्यपि मैं वृद्धहूं--तथापि विवेक के लिये केवल मैंही सामर्थ्यहूं। देखिये सहस्रों पुरुषों को मैंने वश करलिया है--मेरी सूरत देख बुद्धि दूर भागतीहै आप आज्ञादीजिये--मैं सब कौतुक करदिखाऊं॥

तृष्णा। महाराज! मुझेही क्यों न आज्ञा दीजिये मैं सब कार्य्य कर सक्ती हूं॥

लोभ। प्यारी! हमारे रहते तेरे परिश्रम करनेकी क्या आवश्यकता है?॥

काम। राजन्! इस इतने छोटे कार्य्यके लिये सेनाकी आवश्यकताही क्याहै?॥

क्रोध। मैं जाकर सब विवेककी सेनाको नाश कर आताहूं तब तक तुमसब योंहीं विचार बांधो॥

राजा। (अतिप्रसन्नहो) तो मैं देखताहूं कि तुमसब स्वतःसावधान हो--अच्छा मंत्री तुम जाकर द्वेष अभिमानइत्यादि अन्यान्य सब योद्धाओंको मेरीआज्ञा सुनाकर सावधान करदो॥

अधर्म्म। जो आज्ञा महाराज की॥

(सब बाहर गये)

इति पञ्चमअङ्कः॥

## अथ षष्ठअङ्कः ॥

( राजाविवेक बिचार करता सेनापति और एक अनुचर सहित ) आया ॥

राजा । जग सुबुद्धि जे पुरुष वर तेउवश कीन्हें मोह ।
यो पापी अब छलनचह चिदानन्द संदोह ॥

ये सर्व सांसारिक जीव जो अज्ञान दशा में भ्रमितहो रहे हैं महासागर तरंगावली चिदानन्द अमृत जल को छोड़ जोकि सर्वदा उपाधिरहित शान्त है-इस मोक्षको त्याग कैसे सांसारिक मृगतृष्णाके जलसुखको ग्रहण करनेको बड़ाबड़ा परिश्रम उठातेहैं-वे इस मृगतृष्णा जलको पानकरते हैं-उसमें स्नान करते हैं और क्रीड़ा करते हैं किन्तु उसीही में दिन रात्रि डूबे रहते हैं-वे पुरुष इस मोक्ष के आनंद और उसकी बहुमूल्यताको नहीं जानते हैं--अज्ञानही महामोहका कारणहै ॥

श्लोक । नवेत्तियोयस्य गुणप्रकर्षं सतस्यनिन्दांसततंकरोति ।
यथाकिरातीकरिकुम्भजातांमुक्तांपरित्यज्याबिभर्तिगुञ्जाः ॥

और इसीसे वे उसके पानेको उत्साहित नहींहोते हैं-अज्ञानही इसअनित्य मृत्युदशाको स्थापित किये है-परन्तु अज्ञान तब दूरहोजाता है कि जब जीवको विदित होजाताहै कि तत्त्व क्याहै ॥

दोहा । सोहंसोहं रटत नित यह शरीर की श्वास ।
तदपि जीवनहिं ध्यानकर जेहिते पाव निकास ॥

अच्छा कोई है ? ॥

( एक भृत्यआया )

भृत्य । महाराजकी जय-क्या आज्ञाहै ? ॥

सेनापति। स्वामी की आज्ञाहै कि बस्तुबिचार को बुलाओ॥

भृत्य। जोआज्ञा। (बाहरगया और बस्तुबिचारको लेकरआया)

बस्तुबिचार। (आगेबढ़कर) महाराजकी जयहो॥

राजा। मोह हमसे युद्धकरनेको उपस्थितहै-सो मैं तुमको उसके मुख्य योद्धाकामसे युद्धकरनेकीआज्ञादेताहूं-परन्तु कहोतो तुमकिन अस्त्र शस्त्र और कौनप्रकार उसको परास्तकरोगे?

बस्तुबिचार। जो आज्ञा- स्वामी- येही अस्त्र और शस्त्रहैं कि मैं प्रतिक्षण बिचार करूंगा कि देखो इससंसारको कामदेवने कैसा वशकिया अरे यह निर्बिचार सौन्दर्य्यताके अभिमानको बर्द्धनकर कैसा आकाशपर चढ़ाताहै-इस कामने और मोह ने जगत् को उन्मत्त कररक्खा है कि अतिबुद्धिमान् पुरुषभी स्त्रीको जो कि अविमलता और अपवित्राईकी पुत्रीहै देखकर कैसे मधुर बचनों से भाषण करते हैं कि "हे मोहनी! तेरे कमलवतनेत्र-तेरे बिम्बाफल से अधरःतेरे सुन्दर कपोल और तेरी धनुसम मनोहर भृकुटी अधिक शोभा देतीहै-प्यारी ये तेरे कोमलकर- हाथ ये तेरे उठेहुए दाड़िम से कुच-ये तेरी सुन्दर कटि मेरे मनको बिकल करती है-आपद्मिनी प्यारी एकबार तो तू मेरी छाती से लगकर मुझे परमानन्द देदे-प्यारी यदि ये नहीं करती तो एकबार अपने सुन्दर कपोलों का चुम्बन तो देहीदे-फिर मैं तेरा जीवनपर्य्यन्त आज्ञाकारी रहूंगा" इसप्रकार वे स्त्रियों को देख मोहितहो मदन अभिलाषा वशहो बिकलहोते हैं परन्तु वास्तव में जैसी मनोहर वे दिखाई पड़ती हैं नहीं हैं-वे केवल मांस और हाड़ोंका समूहहैं और नवीनवस्त्र और सुन्दर आभूषणादि

से शोभा पाती हैं–और विचारकर कि स्त्रियांही मनको चलायमान करती हैं–मैं मनको स्थिर करलूंगा और तब निस्सन्देह कामवश होजायगा ॥

विवेक । अत्योत्तम–अच्छा जाओ और सावधान रहो ॥

वस्तुविचार । जो आज्ञा महाराजकी ॥

( प्रणामकरके बाहरगया )

विवेक । अब क्षमा को बुलाओ ॥

सेनापति । जो आज्ञा । ( एक अनुचर क्षमा को साथलेकर आया )

क्षमा । ( प्रणामकर ) महाराज की जय ॥

राजा । क्षमा ! इस हमारे और मोहके युद्धभूमिमें मैं तुमको क्रोध से युद्धकरने और उसे परास्त करनेको आज्ञा देताहूं सावधानहो ॥

क्षमा । जैसी आज्ञा महाराज की ॥

सेनापति । अच्छा किसप्रकार तुम क्रोधको पराजय करोगी ? ॥

क्षमा । ( हाथ जोड़कर ) स्वामी के प्रताप से-और ऐसा कहते हैं किः-

सवैया । क्रोधउठे ललकारजबै तब शीलरहे करजोर विचारे ।
क्रोधने बातें अनेककहीं तबशीलने नीचेको नैननिहारे ॥
क्रोधकही उठजारे यहाँते जाउँकहाँतज चरणतिहारे ।
शीलपै जोर कछू न चल्यो तबलौटके क्रोधजू आपुहिंहारे॥

विवेक । सर्वोत्कृष्ट । अच्छा मोहकादल जाकर नाश करो ॥

क्षमा । जो आज्ञा– ( बाहर गया )

राजा । सेनापति ! यही मेरी आज्ञा संतोष इत्यादिसे प्रकट करदो और कटक सजवा सारथी को आज्ञादो कि मेरा युद्धरथ तैयारकरे हम अभी प्रस्थान करेंगे ॥

सेनापति। जो आज्ञा॥

(बाहरगया और कटक साज फिर आया)

सेनापति। (एक उच्चस्थानपर खड़ाहो--सावधान करनेका बिगुल बजाकर)

चौपाई। सुनु संकल्प क्षमादिक योधा। शमदम दया बिराग प्रबोधा॥ कहहुकर्त्तव्य हृदयमहँ ठान्यो। कौन ठाम तव ज्ञान हिरान्यो॥ जाते भै कुत्सित मति तुम्हरी। अति बिपत्ति जिहिं स्वामिहिं परी॥ दिनप्रति सुयश अधोगति होई। तवनहियो ढूँढ़ूका जोई॥ खोवतपति जिन लाज न आई। को निर्लज्ज तुमहिं सम भाई॥ उठहु उठहु अब जागहु ताता। होत अकाज न सोवहु भ्राता॥ दम्भ मान मद मत्सर मोहा। तृष्णा काम अश्रद्धा कोहा॥ पक्षपातआदिक सब अवगुण। जीतहु समरहिं आयसु श्रुण॥

दोहा। यही करन अब उचित प्रिय उठि कटिबध किनहोहु।
जीतहु ईर्षा द्वेष भ्रम परमधर्म्म निज जोहु॥

चौपाई। साजहु कटक बजावहु बाजा। भेरि ढोल सुनि आयसु राजा॥ पहिरहु कवच अस्त्र सबधारू। सजहु मत्त गज मारहु मारू॥ सजहु बाजि रणधीर सुयाना। सावधान है करहु पयाना॥ है है सन्मुख भिरिहहु भैया। धरेहु सीख स्पार्टी मैया॥ जो सिखवत निज सुतन पियारे। देखति नहिं संग्राम तयारे॥ सुनहु सुपुत्र प्राणते प्यारे। सहि अगणित दुख सेये बारे॥ प्रौढ़ भये अब तुम मम ताता। होहु उऋण किन निज प्रिय माता॥ लेहु ढाल गह हर्षित है कर। चिरंजीव मम आशिष उरधर॥

दोहा। यह समेत सुत आइयो नतु समरहिं जिय खोय।

याहि छोड़ जनि आइयो दूध लाज जिहिं होय ॥

( सेनापतिका यह वचन सुनतेही सब योद्धा सावधान होगये और ज्योंहीं प्रस्थानके त्रिशुलका शब्दहुआ तो )

कवित्त । धरा थरथरानी और कूर्म कुलमुलान लाग्यो ससकन लाग्यो शेष हियोहालो दिग्गजको । रवि गयो दवि और पौन भौन माहिं डरयो जल जलन लाग्यो और भयभयो रतिको ॥ कालीकाली आंधीसी उठनलागी चारोंओर बादलसे गर्जरहे नभभयो रजको । जासमे रिपुदलपै चढ़ोहै कटकसाज बांकुरो सुरण सेनापति राजा विवेकको ॥

( उससमय मारूका भयानक शब्द होताथा और तलवारें उस मेघ गाजनके साथ दामिनिसी दमकती थीं-इस प्रकार कटक ने प्रस्थान किया तिस पीछे एक अति सुंदर रथपर चढ़ जिसमें सुधैर्य्य घोड़े जुतेहुएथे राजा विवेकने पयान किया )

विवेक । सारथी ! घोड़ोंकी बाग छोड़दो-और रथको अतिशीघ्रता से चलाओ ॥

सारथी । ( रथको अतिवेगसे चला ) जो आज्ञा स्वामी की ॥

( सब बाहर गये )

इति षष्ठअङ्कः ॥

---

अथ सप्तमअङ्कः ॥

( विनीत वेषकिये पुरुषका प्रवेश )

पुरुष । ( अतिहर्षसे )

दोहा । अगमघोर संग्राममहँ भो परास्त नृप मोह ।
दम्भमान कामादि सब नश्यो द्रोह अरु कोह ॥

जगतभयो आनंद अब चहुँदिशि शान्ति लखात।
निशा अविद्या मिटगई भयो प्रबोध प्रभात॥
दृश्य अदृश्य विचारमहँ आयसके पुनि जौन।
पुनि विचारहू ब्रह्म जो ईशछोड़ कहुकौन॥

आहा आज मुझे कैसा आनंद हुआ है-मोहपाश से छूट आज मेरे हृदयकी तीक्ष्ण ज्वाला जो बड़वानलसी जलतीथी बंदहोगई अब मैं शान्तिहूं॥

(ततः उपनिषद्का प्रवेश)

उपनिषद्। आह आज मेरी शिक्षा मानी गई और अब मेरी सब मनोरथें सुफलहुईं-वत्स! आज शत्रुरहित तुझेदेख मुझे बड़ाहर्ष हुआहै (पुरुषको छातीसे लगाकर) और क्य मनोरथ अब तेरे है। कह॥

पुरुष। माता! अब मेरे कौनसी मनोरथ रहगई-तेरी कृप से अब मुझे सर्वानन्दहै-जिसपर तू कृपादृष्टि करती है उसके फिर याचना की इच्छाही नहीं होती है। मुझे तेरी कृपा कटाक्षही अब चाहिये और कुछ नहीं॥

उपनिषद्।(अतिआनन्दितहो)तथास्तु-प्रियपुत्र!

पुत्र!दोहा।केवल विद्याते छुटत महामोह दृढ़ ग्रंथ।
कठिन अविद्या नहिंटरत कल्पे कोटिकपंथ॥
पंथ कल्पना प्रवृतितें प्रवृति अविद्याप्रीत।
तिहिकारण प्रियपुत्रतू कर सुनिवृतिहिं मीत॥

पुरुष। (हाथजोड़) माता! तेरे हितोपदेश बिन ऐसा आनन्द कहां॥

उपनिषद्।वत्स मैं तो सदा सर्वदा से उपदेशही के कारणहूं॥

(नेपथ्यमें)

दोहा। सकल कुतर्कहिं छोड़ जो लेत सुआश्रय मोर।
मिटत मुकुर मनअमलता शुद्धिहोत हियतोर॥

(सत्यका प्रवेश)

सत्य। यद्यपि महाराज वैशम्पायनने स्पष्ट लिखदिया है किः--"ऋषीणांभारतीभाति सरलागहनान्तरा। धीरास्तत्तत्त्वमृच्छन्ति मुह्यन्तिप्राकृताजनाः"॥ अर्थात् महानुभाव ऋषियोंकी सरलवाणीका आशय अतिगुप्त होताहै--कोई कोई अति बुद्धिवर पुरुष समझते हैं और प्राकृतजन तो उसमें मोह वशीभूत होजातेहैं॥ तथापि सब उनकी सरल वाणी को बिसर जाते हैं और फिर भ्रम में फँस व्याकुल फिरते हैं॥

उपनिषद्। वत्स! देख मेरा परमस्नेही और तेरा हिताभिलाषी सत्य आया है॥

(पुरुष दोनों भुजा पसारकर सत्यसे जा लपटा)

पुरुष। मित्र! बहुत दिनों में मिले॥

सत्य। मित्र! क्या करूं तूतो मुझको देख दूर भागता था॥

उपनिषद्। तब यह असत्यकी दृढ़पाश में जकड़ाथा॥

पुरुष। हाय मैं किस मुख से आपसे क्षमा मांगूं-अबतो हे माता! मुझे तेरीही कृपाका और इस मित्र सत्यहीका आश्रय मैंने लिया है॥

उपनिषद्। पुत्र!

दोहा। पहिंचानहु तिहि ईश्वरहिं जो व्यापक सब ठौर।
मानिय आज्ञा तासुकी जो मंत्रन शिरमौर॥
सबके सत्यासत्यमार्गदर्शक हिताहितज्ञान (Conscience)

है जो इसकी आज्ञा विरुद्ध कर्म्म करते हैं वेही असुरहैं ॥ अर्थात् "असूर्य्या नामतेलोका अन्धेन तमसा वृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति येकेचात्महनोजनाः" ॥ अर्थात् आत्माका हिंसन करनेवाला अर्थात् जो परमेश्वरकी आज्ञाको तोड़ताहै और अपने आत्मा के भयसे विरुद्ध करता है और मानता है वही असुरहै ॥

वत्स ! दोहा। माननीय नहिं पुरुष वह जो केवल विद्वान।
पर कुकर्म्म अरु दुष्टता जामें लखौ सुजान ॥
तजै दुष्टता, द्वेष, अरु गर्व उपद्रव जोय।
तदपि ताहि सनमानिये अविद्वान किनहोय ॥
सावधान रहिये सदा नहिं बिगरै जिहिंकाज।
पापकर्म्मकर समयकोउ नियतनाहिं महराज ॥
ईश कोप नहिं करत है पुत्रसीख मम मान।
किन्तु दंड जो देत है ताहि सुशिक्षा जान ॥
तव उतपतके पूर्व तुम रहे कहा मम तात।
मृत्यु अन्त पुनि होहुगे का पदार्थ विख्यात ॥
कर स्मरण सुबुद्धिवर सो पदार्थ सत भाय।
जातेहोइ न गर्व तुहिं फेर मोक्ष जिहि पाय ॥
काहूको जनि दीजिये अपने आपे कष्ट।
प्रभुता भव या जगत कर अवशि होयगो नष्ट ॥
अतिअभाग्यतिहिपुरुषकर जानियतातसुजान।
जिहिंस्मरण न अंतकर पुनिजु पापकर खान ॥
जनि चाहौ तिहि याचना अतिदरिद्र है जोय।
किन्तु दीजिये प्रथमही तव याचक जब होय ॥
आज्ञी अहै न पुरुष सो लै संसारिक सुःख।

अतिमोदित जो होतहै पुनिसहितस्कृत न दुःख॥
सत्य ग्रहण मद त्यागबो अरु चोरी व्यभिचार ।
जीवघात हिंसा त्यजन पंच सुभग आचार ॥
पुत्र येही महान् कर्त्तव्य परमधर्म्म हैं येही ईश्वर
की आज्ञा सब पुरुषोंके लियेहै ॥

पुरुष । ( पैरोंपर गिरकर )

दोहा । धन्य धन्य प्रिय मातु मम धन्य धन्य सो मातु ।
परम हर्ष भा आज अब सर्वानन्द सखात ॥

सत्य । आज तेरी अविद्या निशा मिट परमशोभनीक देदी-
समान प्रबोध प्रभाकर का उदय यह तुझे आनन्द देरहा
है--जैसे द्युमणि का उदय सर्व अंधकार मेट कमलोंको
प्रफुल्लित करताहै--जबतक अविद्या दूर नहीं होतीहै तबतक
दुःख महासागर से पुरुष निकास पाताही नहीं । और ॥

दोहा । जग पदार्थ स्नेह तें उपज अविद्या तात ।
नहिंकोउ पिता न मातु सुत कोउनहितबन्धुभ्रात ॥
असुविवेक बिचारतें मिटत जीव अज्ञान ।
तब पदार्थ ज्ञानहु मिटत दशा तुरीय बखान ॥
जग जीवन है स्वप्नवत कुविषय होहिं अपार ।
नींद अविद्यातें जगे सो दर्शात असार ॥
जग असत्य दर्शात सत रजत सीपवत भास ।
पूरण ब्रह्मविचार तें पर सब तत्त्व प्रकास ॥
चित्र विचित्र पदार्थ जो सकल ब्रह्म आधार ।
जिमि जग सुबरणतें बनत भूषण बहुत प्रकार ॥
एक अनादि अनंत प्रभु सर्व व्यापक शान्त ।
सोइ माया कुविकारतें सविकारितवत भ्रान्त ॥

जिमि घन सूर्य्यप्रकाशतें अगणित रंग अकास।
सन्ध्यासमयलखाततुहिं तिमि सो आत्माभास॥
भिन्न नाम लक्षण चरित भिन्न भिन्न बहु जात।
अद्वितीय सो आत्महिं रोपत माया तात॥
पञ्चतत्त्व से रचित तनु नाशमान जो जान।
पुनि गृह हर्ष विषाद कर सो अस्थूल बखान॥
पञ्च प्राण बुद्धीन्द्रि मन ये मिल सूक्ष्म शरीर।
जिहितें ज्ञान पदार्थ कर होत हर्ष अरु पीर॥
अकथ असत्य बिकार गृह आदिहितें पुनि जोय।
आच्छादित ब्रह्माण्ड पुनि माया जानहुँ सोय॥
थूल सूक्ष्म तनु भिन्न पुनि मायाहूँते जौन।
सदानन्द चैतन्य सत आत्मा जानहु तौन॥
या जीवन के विषय वश है सो आत्मा तात।
निर्विकार यदि स्वतः सो कुविषय करत जनात॥
शम दम कर पीड़ित तनुहिं जबसुविवेकसहाय।
तब तन्डुल जिमि धानतें सो आत्मा बिमलाय॥
जगअनेकयदि योनि भिय अगणित बर्ण स्वरूप।
पर सो आत्मा एकही अमल अनादि अनूप॥
मन संकल्प बिकल्पतें यदपि सर्व जग कर्म्म।
अज्ञलगावत आतमहिं जिमि नभनीलयो मर्म्म॥
सूर्य्य प्रकाशित शीतजल स्वतः तप्त जिमि आग।
तिमि स्वाभाविक आतमा सदानन्द अविभाग॥
बुद्धि बोध अज्ञान वश रोपि आतमहिं तात।
पुरुष अहंइत्यादि कह सोव अविद्या रात॥
इमि आत्मातें भिन्नकोउ आपुहिं मानत जीव।

होत दुखित अरु हर्षयुत मृगतृष्णा जल पीव ॥

उपनिषद् । पुत्र !

[illegible] । सो आतमा नहिं अन्य तू तोहिं ताहि नहिं भेद ।
जिमिजल अरु जलबीचिमहँ नहिं अन्तर कहवेद ॥
[illegible] नहिं नहिं जग सत्य नहिं किनसोहं विश्वास ।
जीव आतमा ऐक्यता करत अविद्या नाश ॥

सत्य । एक अनादि अनंत जो शान्त सच्चिदानन्द ।
निर्विकार सर्वत्र पुनि अप्रमाण सुखकन्द ॥
अलख निरंजन ब्रह्म जो सर्व शास्त्रिक तात ।
ताहि छोड़ नहिं अन्य कछु जोजहँ तोहिं लखात ॥

पुरुष । ( प्रेम में मग्नहो उपनिषद्के सोहीं दंडवत् गिरपड़ा )
माता ! प्यारी माता !

उपनिषद् । ( पुरुषको उठा छातीसे लगालिया )

पुरुष । माता ! अब प्रसन्नहो आशीर्वाददे कि सर्व पुरुष नानाप्रकार की अनेक पंथ कल्पना छोड़ इसपरमानन्दको प्राप्तिहों और सर्व जगत् आनन्दपरिपूर्णहो-परमानन्दहो-आनन्दमयहो-आनन्द--आनन्द--परमानन्दहो--परमानन्द परिपूर्णहो ॥

उपनिषद् । तथास्तु ।

( सब बाहर गये )

इति सप्तमअङ्कः ॥

समाप्तश्चायंप्रबोधचन्द्रोदयोनामनाटकः ॥

---

मुंशीनवलकिशोर ( सी, आई, ई ) के छापेखाने मुकाम लखनऊ में छपी
अक्टूबर सन् १९०५ ई० ॥
हक़तसनीफ़ महफ़ूज़है बहक़ इसछापेख़ाने के ॥

## श्रीमद्बाल्मीकीय रामायण भाषा किताबनुमा
## कागज़ रस्मी ५) व कागज़ गुन्दा ६)

पूरे सातोंकाण्ड अयोध्यापाठशाला के तृतीयाध्यापक पण्डित महेशदत्तकृत भाषा—यह वही पण्डितजी महाराज हैं जिन्होंने पहिले देवीभागवत और विष्णुपुराण का उल्था किया है दोभागों में याथातथ्य सुगमरीति से परिपूर्ण श्लोक के अनुसार हुआ है कोई शब्द भी छूटने नहीं पाया और श्लोक के जानने के लिये अंक भी लगादिये हैं कि भ्रम न पड़े अक्षर टैपके बहुत पुष्ट हैं अबकी बार बड़ी होशियारी से छापीगई है ॥

## तथा पत्रानुमा क़ी० १५)

विदित हो कि यह पत्रानुमा बाल्मीकीयरामायण जो कि अबकी बार मालिक मतबाने छपाकर मुद्रित की है वह बहुतही अनुपम होकर संदर्शनीयहै कि जिसका भाषानुवाद धनावली ग्रामनिवासि रामचरणोपासि पण्डित महेशदत्त ने किया व जिसका संशोधन भी संस्कृत प्रति से उन्नाम प्रदेशान्तर्गत गुण्डाग्रामनिवासि पण्डित सूर्यदीनजी ने किया है इसमें प्रत्येक श्लोकों का अर्थ अन्वयरीतिसे कहागया व प्रत्येक पदों व अक्षरों का जैसा अर्थ होना चाहिये था वैसाही हुआ है यद्यपि मुम्बई आदि नगरों में इसके बहुत से अनुवादहुए हैं तो भी वह इसके समान नहीं होसक्ते हैं क्योंकि उक्त नगरोंके छपेहुए अनुवादों में कहीं २ अन्वय रीतिसे अर्थ मिलता व कहीं २ मनमाना देख पड़ता है इस भेद को विद्वान्लोगही समझसक्ते हैं इस हमारे अनुवादमें शुद्धता, छपाई, रोशनाई, कागज़ आदि बड़ी सफ़ाई के साथमें हैं इसकी सरल हिन्दी भाषा सर्व देशवासियों के समझ में आसक्ती है जिसकी भूमिका सकलजनतोषिका बनी है व जिसके प्रत्येक सर्गों का सूचीपत्र भी बहुत ही उत्तम रचाया है केवल इसीसेही सर्वसाधारण जन रामायण की पारायण बांचसक्ते हैं—इसकी उत्तमता लेखनी से बाहर है अहो ग्राहकगणो! इसके खरीदने में विलम्ब मतकरो क्योंकि विलम्ब होने में सिवाय पछिताने के और कुछ हाथ नहीं लगता है आशा है कि सर्व महाशयजन अवश्यही इसको देखेंगे और इसकी एक २ प्रति खरीदकर अपने घरको सुशोभित करेंगे अथेकिमधिकं बहुज्ञेष्वित्यलम् ॥

# सरित्सागर भाषा क़ी० ३) पु०

हिन्दी भाषा के परमहितैषी भार्गववंशावतंस मुंशीनवलकिशोर ( सी, आई, ई ) ने विद्वानों के मुख से इस कथा सरित्सागर नाम ग्रन्थरत्न की प्रशंसा तथा सदुपदेश भरी अत्यन्त मनोहर कथाओं को सुनकर अपनी मातृभाषा हिन्दीका गौरव बढ़ाने के लिये हमलोगों को यथोचित धन देकर इसका अनुवाद करवाया इस अनुवाद में हमलोगों ने यथाशक्ति यह उद्योग किया है कि श्लोक के किसी शब्द का अर्थ न रहने पावे और यथा संभव भाषाका प्रबन्ध भी न विगड़ने पावे इसमें जहां २ नीति के श्लोक आगये हैं वह भी अनुवाद सहित कोष्ठक में लिख दिये गये हैं ॥

हमलोग आशा करते हैं कि जैसे इस ग्रन्थकी कथाओं के आशयों को लेकर संस्कृत के कवियों ने नागानन्द, कादम्बरी हितोपदेश मुद्रा राक्षस तथा वेताल पंचविंशतिका आदि अनेक ग्रन्थ बनाये हैं इसीप्रकार इस अनुवाद को देखकर हिन्दीभाषा के सुलेखकगण भी इसकी कथाओं के आशयों को लेकर अनेक नवीन ग्रन्थ बनाके अपनी मातृभाषाके गौरव को बढ़ावेंगे हमलोगों को यह भी दृढ़ विश्वास है कि यदि इस यन्त्रालयाधिपति की आज्ञानुसार इस ग्रन्थ की छोटी छोटी कथाओं को लेकर दो चार छोटे छोटे ग्रन्थ बनवाकर पाठशालाओं के दशम नवम अष्टम तथा सप्तम आदि वर्गों के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिये नियत किये जायँ तो उनको विना प्रयासकेही सदुपदेश का लाभ होगा और इससमय यह ग्रन्थ विशेष शुद्धता के साथ उम्दा हरूफ़ में छपाहुआ तैयारहै मूल्य बहुतही न्यूनहै ग्राहकलोग विलम्ब करने में पछतावेंगे ॥

मैनेजर अवध अखबार प्रेस
लखनऊ हज़रतगंज